भगवान् शिव की अष्टमूर्त्तियाँ[1] एवं उनके तीर्थ

शिव परमात्मा या ब्रह्मका ही नामान्तर है। जो सर्व भूतों में अवस्थित होते हुए भी सर्वभूतों से पृथक् हैं, सर्वभूत जिन्हें जानते नहीं, किंतु सर्वभूत जिनके शरीर हैं और जो सर्वभूतों के अंदर रहकर सर्वभूतों का नियन्त्रण करते हैं–वे ही(परम) आत्मा, वे ही अन्तर्यामी और वे ही अमृत हैं।

पञ्चभूतों में जगत् संगठित है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य और जीवात्मा–इन्हीं अष्टमूर्त्तियों द्वारा समस्त चराचर का बोध होता है। तभी महादेव का एक नाम 'अष्टमूर्त्ति' है।

शिवपुराण में आया है–

तस्य शंभोः परेशस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत्।
तस्मिन् व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव।।
शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशो पतिः।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्ट विश्रुताः।।
भूम्यम्भोऽग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः।
अधिष्ठिताश्च शर्वाद्यैरष्टरूपैः शिवस्य हि।।
अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठाय स्थितं शिवम्।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम्।। (शतरु. सं. 2/2-4, 16)

अर्थात्–इन देवादिदेव की अष्टमूर्त्तियों से यह अखिल जगत् इस प्रकार व्याप्त है, जिस प्रकार सूत के धागे में सूत की ही मणियाँ। भगवान् शंकर की इन अष्टमूर्त्तियों के नाम यह हैं–शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान। ये ही शर्व आदि अष्टमूर्त्तियाँ क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्र, सूर्य और चन्द्रमा को अधिष्ठित किये हुए हैं। इन अष्टमूर्त्तियों द्वारा विश्व में अधिष्ठित उन्हीं परमकारण भगवान् की सर्वतोभावेन आराधना करो।'

सूर्य और चन्द्र प्रत्यक्ष देवता हैं। पृथ्वी, जल आदि पञ्चसूक्ष्मभूत हैं, जीवात्मा ही क्षेत्रज्ञ है। जीव ही यजमानरूप से यज्ञ या उपासना करनेवाला है, इसलिये उसे यजमान भी कहते हैं। पाश या माया से युक्त जीव ही पाशु या पशु है और जीव के उद्धारकर्त्ता होने के कारण ही महादेव 'पशुपति' हैं। वे ही जीव का पाश–मोचन करते हैं।

शिवपुराण का कथन है कि परमात्मा शिव की ये अष्टमूर्त्तियाँ समस्त संसार को व्याप्त किये हुए हैं। इस कारण जैसे मूल में जल–सिञ्चन करने से वृक्ष की सभी शाखाएँ हरी–भरी रहती हैं, वैसे ही विश्वात्मा शिव की पूजा करने से उनका जगद्रूप शरीर पुष्टि–लाभ करता है। अब हमें यह देखना

---

1. संस्कृत में 'मूर्ति' या 'मूर्तियाँ' को क्रमशः 'मूर्त्ति' या 'मूर्त्तियाँ' लिखा जाता है। यहाँ पर अधिकाशतः संस्कृत शब्द ही प्रयोग किया गया है।

है कि शिव की आराधना क्या है। सब प्राणियों को अभयदान, सबके प्रति अनुग्रह, सबका उपकार करना–यही शिव की वास्तविक आराधना है। जिस प्रकार पिता पुत्र–पौत्रादि के आनन्द से आनन्दित होता है, उसी प्रकार अखिल विश्व की प्रीति से शङ्कर की प्रीति होती है। किसी देहधारी को यदि कोई पीड़ा पहुँचाता है तो इससे अष्टमूर्त्तिधारी महादेव का ही अनिष्ट होता है। जो इस प्रकार अपनी अष्टमूर्त्तियों द्वारा अखिल विश्व को अधिष्ठित किये हुए हैं, उन्हीं परमकारण महादेव की सर्वतोभावेन आराधना करनी चाहिये।

आत्मा तस्याष्टमं रूपं शिवस्य परमात्मनः।
व्यापिकेतरमूर्त्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम् वस्य तद्रूपं।।
शाखाः पुष्पयन्ति वृक्षस्य वृक्षमूलस्य सेचनात्।
तद्वदस्य वपुर्विश्वं पुष्प्यते च शिवार्चनात्।
यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत् पिता।
तथा विश्वस्य सम्प्रीत्या प्रीतो भवति शङ्करः।।
क्रियते यस्य कस्यापि देहिनो यदि निग्रहः।
अष्टमूर्त्तेरनिष्टं तत्कृतमेव न संशयः।।
अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठाय स्थितं शिवम्।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम्।। (शिवपुराण शतरु. सं. 2/12–16)

'सर्वभूतों में और आत्मा में ब्रह्म अथवा शिव का दर्शन अर्थात् 'सर्वं शिवमयं चैतत्'–इस भाव की अनुभूति किये बिना जन्म–मरण से मुक्ति नहीं होती।' इस भाव की उत्पत्ति के लिये ही इन अष्टमूर्त्तियों की पूजा कही गयी है।

अष्टमूर्त्तियों के तीर्थ

(1) सूर्य

सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं–

आदित्यं च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम्।
उभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च।। (तीर्थांक पृ. 482)

अर्थात् शिव और सूर्य में कोई भेद नहीं है, इसलिये प्रत्येक सूर्य–मन्दिर शिव–मन्दिर ही है।

(2) चन्द्र

काठियावाड़ का सोमनाथ मन्दिर और बंगाल का चन्द्रनाथ–क्षेत्र –ये दोनों महादेव की सोममूर्त्ति के ही तीर्थ हैं।

सोमनाथ[1] का मन्दिर प्रभासक्षेत्र में है और चन्द्रनाथ का पूर्वी बंगाल (जो अब बंगला देश में है) के चटगाँव नगर से 34 मील उत्तर-पूर्व में एक पर्वत पर स्थित है। स्थान का नाम सीताकुण्ड है। श्रीचन्द्रनाथ का मन्दिर पर्वत के सर्वोच्च शिखर पर है, जो समुद्र की सतह से चार सौ गज ऊँचा है। देवीपुराण के चैत्र-माहात्म्य के अनुसार यह त्रयोदश ज्योतिर्लिङ्ग है, जो पहले गुप्त था और कलि में लोकहितार्थ प्रकट हुआ है। काशी, प्रयाग, भुवनेश्वर, गङ्गा-सागर, गङ्गा और नैमिषरण्य के दर्शन से जो फल प्राप्त होता है, वह श्रीचन्द्रनाथ-क्षेत्र में जाने से एक साथ प्राप्त हो जाता है।

श्रीचन्द्रनाथ के निकट और भी अनेक तीर्थ हैं। उदाहरणार्थ-

(1) उत्तर में लवणाक्षकुण्ड है, जिसमें से अग्नि की ज्वाला निकलती है; (2) पर्वत के नीचे गुरुधूनी है, जो पत्थर पर प्रज्वलित है; (3) तप्त-जलयुक्त ब्रह्मकुण्ड, (4) सहस्त्रधारा-जलप्रपात, (5) कुमारीकुण्ड, (6) श्रीव्यासजी की तपस्या भूमि, व्यासकुण्ड, (7) सीताकुण्ड, (8) ज्योतिर्मय, जहाँ पाषाण के ऊपर ज्योति प्रज्वलित है, (9) काली, (10) श्रीस्वयम्भूनाथ, (11) मन्दाकिनी नाम का स्त्रोत, (12) गयाक्षेत्र, जहाँ पितरों को पिण्डदान दिया जाता है, (13) श्रीजगन्नाथजी का मन्दिर, (14) क्षत्रशिला, जहाँ पत्थर की गुहा में अनेक शिवलिङ्ग हैं, (15) विरूपाक्ष-मन्दिर, (16) हर-गौरी का विहार-स्थल, एक सुरम्य नीरव स्थान में है तथा जहाँ सघन वृक्षावली के होते हुए भी पशु-पक्षीगण बिल्कुल शब्द नहीं करते तथा (17) आदित्यनाथ इत्यादि।

(3) यजमानमूर्त्ति

नेपाल के पशुपतिनाथ[2] महादेव यजमानमूर्त्ति के तीर्थ हैं-पशुपतिनाथ लिङ्गरूप में नहीं, मानुषी विग्रह के रूप में विराजमान हैं। विग्रह कटिप्रदेश से ऊपर के भाग का ही है। मन्दिर चीनी और जापानी ढंग का बना हुआ है और नेपाल राज्य की राजधानी काठमाण्डू में बागमती नदी के दक्षिण तीर पर आर्याघाट के समीप अवस्थित है। मूर्त्ति स्वर्णनिर्मित पञ्चमुखी है। इसके आस-पास चाँदी का जँगला है, जिसमें पुजारी को छोड़कर और किसी की तो बात ही क्या, स्वयं नेपाल-नरेश का भी प्रवेश नहीं हो सकता। नेपाल राज्य में बिना पासपोर्ट के भारतीयों का प्रवेश है। नेपाल महाराज अपने को श्रीपशुपतिनाथजी का दीवान कहते हैं।

(4) क्षितिलिङ्ग

पञ्चमहाभूतों के नाम से जो पाँच लिङ्ग प्रसिद्ध हैं, वे सभी दक्षिण-भारत के मद्रास (चेन्नई) प्रदेश में हैं। इनमें से एकाम्रेश्वर का क्षितिलिङ्ग शिवकाञ्ची में है। मोक्षदायिनी सप्तपुरियों में अयोध्या, मथुरा, द्वारावती (द्वारिका), माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची और अवन्तिका (उज्जैन) की गणना की जाती

1. इसका वर्णन 'द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग' शीर्षक लेख में अलग दिया गया है- सम्पादक

2. पशुपतिनाथ के बारे में विस्तृत जानकारी अन्य लेख में दी जायगी।

है। इनमें कांची हरि-हरात्मक पुरी है। इसके शिवकांची और विष्णुकांची दो भाग हैं।

काञ्ची 51 शक्तिपीठों में से एक है। यहाँ सती का कंकाल (अस्थिपंजर) गिरा था। संभवतः कामाक्षी मन्दिर ही यहाँ का शक्तिपीठ है। दक्षिण के पंचतत्त्व-लिंगों में से भूतत्त्व-लिंग के सम्बन्ध में कुछ मतभेद है। कुछ लोग काञ्ची के एकाम्रेश्वर-लिंग को और कुछ लोग तिरुवारूर की त्यागराज लिंगमूर्त्ति को पृथ्वीतत्त्व-लिंग मानते हैं।

मद्रास-धनुष्कोटि लाईन पर मद्रास से 35 मील दूर चेंगलपट स्टेशन है। वहाँ से एक लाईन अरकोनम्तक जाती है। इस लाईन पर चेंगलपट से 22 मील दूर कांजीवरम् स्टेशन है। मद्रास, चेंगलपट, अरकोनम्, तिरुपति, तिरुवण्णमलै आदि सभी प्रमुख स्थानों से काञ्ची के लिये मोटर-बस मिल जाती है।

यहाँ स्टेशन का नाम कांजीवरम् है, किन्तु नगर का नाम कांचीपुरम् है। एक ही नगर के दो भाग माने जाते हैं-शिवकांची और विष्णुकांची। इनमें शिवकांची नगर का बड़ा भाग है। स्टेशन के पास यही भाग है। विष्णुकांची स्टेशन से लगभग 5 कि. मी. पड़ता है। नगर से लगभग 4 कि. मी. दक्षिण पालार नदी है।

स्टेशन से लगभग 2 कि. मी. दूर सर्वतीर्थ नामक विस्तृत सरोवर है। शिवकांची में स्नान के लिये यह मुख्य तीर्थ है। सरोवर के मध्य में एक छोटा सा मन्दिर है। सरोवर के चारों ओर अनेकों मन्दिर हैं। उनमें मुख्य मन्दिर काशी-विश्वनाथ का है।

एकाम्रेश्वर शिवकांची का मुख्य मन्दिर है जो सर्वतीर्थ सरोवर के पास ही पड़ता है। यह मन्दिर बहुत विशाल है। मन्दिर के दक्षिण द्वारवाले गोपुर के सामने एक मण्डप है। इसके स्तंभों पर सुन्दर मूर्त्तियाँ बनी हैं। मन्दिर के दो बड़े-बड़े घेरे हैं। पूर्व के घेरे में दो कक्षाएँ हैं, जिनमें पहली कक्षा में प्रधान गोपुर, जो दस मंजिल ऊँचा है, स्थित है। यहाँ द्वार के दोनों ओर क्रमशः सुब्रह्मण्यम् तथा गणेशजी के मन्दिर हैं। दूसरी कक्षा में शिवगंगा सरोवर है। इसमें ज्येष्ठ के महोत्सव के समय उत्सव मूर्त्तियों का जलविहार होता है। उस समय यहाँ बड़ा मेला लगता है। इस सरोवर के दक्षिण मण्डप में श्मशानेश्वर शिवलिंग है। इस घेरे से मिला मुख्य मन्दिर का द्वार है।

मुख्य मन्दिर के तीन द्वारों के भीतर श्रीएकाम्रेश्वर शिवलिंग स्थित है। लिंगमूर्त्ति श्याम है। कहा जाता है यह वालुका-निर्मित है। लिंगमूर्त्ति के पीछे श्रीगौरीशंकर की युगल मूर्त्ति है। यहाँ एकाम्रेश्वर पर जल नहीं चढ़ता। चमेली के सुगन्धित तेल से अभिषेक किया जाता है। प्रति सोमवार को भगवान् की सवारी निकलती है।

मुख्य मन्दिर की दो परिक्रमाएँ हैं। पहली परिक्रमा में क्रमशः शिवभक्तगण, गणेशजी, 108 शिवलिंग, नन्दीश्वरलिंग, चण्डिकेश्वरलिंग तथा चन्द्रकण्ठबालाजी की मूर्त्तियाँ हैं। दूसरी परिक्रमा में कालिकादेवी, कोटिलिंग तथा कैलास-मन्दिर है। कैलास-मन्दिर एक छोटा सा मन्दिर है, जिसमें शिव-पार्वती की स्वर्णमयी

उत्सव-मूर्त्ति युगल विराजमान है। जगमोहन में 64 योगिनियों की मूर्त्तियाँ हैं।

एकाम्रेश्वर मन्दिर के प्रांगण में एक बहुत पुराना आम का वृक्ष है। यात्री इस वृक्ष की परिक्रमा करते हैं। इसके नीचे चबूतरे पर एक छोटे मन्दिर में तपस्या में लगी कामाक्षी पार्वती की मूर्त्ति है।

दूसरी परिक्रमा के पूर्ववाले गोपुर के पास श्रीनटराज तथा नन्दी की सुनहरी मूर्त्तियाँ हैं। उस घेरे में नवग्रहादि अन्य देवविग्रह भी हैं।

एकाम्रेश्वर-मन्दिर से लगभग दो फर्लांग पर (स्टेशन की ओर) कामाक्षी देवी का मन्दिर है। वह दक्षिण भारत का सर्वप्रधान शक्तिपीठ है। कामाक्षी देवी आद्याशक्ति भगवती त्रिपुरसुन्दरी की ही प्रतिमूर्त्ति हैं। इन्हें कामकोटि भी कहते हैं। कामाक्षी के विशाल मन्दिर में देवी की सुन्दर प्रतिमा है। इसी मन्दिर में अन्नपूर्णा तथा शारदा के भी मन्दिर हैं। इस मन्दिर के घेरे में एक सरोवर भी है। कामाक्षी देवी का मन्दिर श्रीआदिशंकराचार्य का बनवाया हुआ कहा जाता है। मन्दिर की दीवार पर अनेक देव-देवियों के विग्रह हैं। जिनकी संख्या 100 से अधिक होगी। शिवकांची में बहुत से मन्दिर हैं जिनमें 108 शिव-मन्दिर हैं। एकाम्रेश्वर मन्दिर के गोपुरम् पर हैदरअली के तोपों के गोलों के चिन्ह अबतक मौजूद हैं।

कुछ लोग तिरुवारूर के त्यागराज को क्षितिलिंग मानते हैं। अत: यहाँ उस लिंग की भी संक्षिप्त चर्चा की जा रही है।

दक्षिण रेलवे की चेन्नई (मद्रास) से धनुष्कोटि जानेवाली लाइन पर मायावरम् एक प्रसिद्ध स्टेशन है। इसी मायावरम् से एक लाइन कारैक्कुडीतक जाती है। इस लाइन पर मायावरम् से 37 कि. मी. पर तिरुवारूर स्टेशन है। तंजौर से नागौर जानेवाली लाइन पर यह स्थान तंजौर से 52 कि. मी. दूर है। स्टेशन से लगभग 2 कि. मी. पर मन्दिर है।

यहाँ भगवान् शंकर का मन्दिर है। यहाँ शिवमूर्त्ति को त्यागराज कहते हैं और मन्दिर में जो पार्वती का विग्रह है, उसे नीलोत्पलाम्बिका कहते हैं। दक्षिण का यह त्यागराज मन्दिर बहुत प्रख्यात है। इस स्थल के उत्तर एवं दक्षिण दो नदियाँ बहती हैं। कहा जाता है कि त्यागराजमन्दिर का गोपुर दक्षिण भारत के मन्दिरों के गोपुरों में सबसे चौड़ा है।

मन्दिर के गोपुर के भीतर गणेश एवं कार्तिकेय के श्रीविग्रह हैं। भीतर नन्दिकेश्वर की मूर्त्ति है जिसे अनेक पशु-रोगों की निवारक मानी जाती है। आगे तपस्विनीरूप में पार्वती की मूर्त्ति है। यह पराशक्ति के पीठों में से एक पीठ माना जाता है। देवी की मूर्त्ति चतुर्भुजी है। देवी की परिक्रमा में 'अक्षरपीठ' मिलता है।

वहाँ अचलेश्वर शिवमन्दिर के शिवलिंग की छाया केवल पूर्व दिशा में पड़ती है। इसके अतिरिक्त मन्दिर के घेरे में हाटकेश्वर, आनन्देश्वर, सिद्धेश्वर आदि कई मन्दिर हैं। यहाँ सबसे मुख्य मूर्त्ति त्यागराज की है। इनका 'अजपानटनम्' नृत्य बहुत प्रसिद्ध है। कहते हैं यह मूर्त्ति महाराज मुचुकुन्द के द्वारा स्वर्ग से लायी गयी थी। त्यागराज-मन्दिर का जहाँ रथ है वहाँ एक शिवमन्दिर है। वहाँ अनेक देव मूर्त्तियाँ

एवं मन्दिर हैं।

यहाँ मन्दिर के पास विस्तृत कमलालय सरोवर है। यही यहाँ का मुख्य तीर्थ है। उसमें 65 घाट हैं। एक-एक घाट पर एक-एक तीर्थ है। इन सभी घाटों में देवतीर्थ-घाट सबसे मुख्य है। कहा जाता है कि इस क्षेत्र में जन्म लेने से ही मुक्ति होती है। इस क्षेत्र का पौराणिक नाम कमलालय है। यहाँ पार्वती, लक्ष्मी एवं सरस्वती-तीनों ने तप किया है।

किसी पुराण का श्लोक यह है कि-

दर्शनादभ्रसदसि जन्मना कमलालये।

काश्यां हि मरणान्मुक्तिः स्मरणादरुणाचले।। (तीर्थांक पृ. 363 पादटिप्पणी)

अर्थात् चिदम्बरक्षेत्र (जहाँ आकाशतत्त्वलिंग विराजमान है) के दर्शनमात्र से, कमलालयक्षेत्र में जन्म लेने से, काशी में मरने से और अरुणाचलक्षेत्र के स्मरणमात्र से ही मुक्ति हो जाती है।

त्यागराज की स्तुति अनेक शैवाचार्यों ने की है जिसमें तिरुज्ञानसंबंधर, अप्पर तथा सुन्दरमूर्त्ति प्रमुख हैं। इन तीन आचार्यों की कथा इसी पुस्तक में अन्यत्र दी गयी है। दक्षिण भारत में त्यागराज की सात पीठस्थलियाँ हैं। उनमें भगवान् शिव की नृत्य करती मूर्त्तियाँ हैं।

एकाम्रेश्वर का पौराणिक इतिहास यह है कि एक समय पार्वती ने कौतूहलवश चुपचाप पीछे से आकर दोनों हाथों से भगवान् शङ्कर के तीनों नेत्र बंद कर लिये। श्रीमहेश्वर के लोचन त्रय आच्छादित हो जाने से सारे संसार में घोर अन्धकार छा गया; क्योंकि सूर्य, चन्द्र और अग्नि जो संसार को प्रकाशित करते हैं, वे शङ्कर (के नेत्रों) से ही प्रकाश पाते हैं।

अतः ब्रह्माण्डलोप की नौबत आ पहुँची। इस प्रकार श्रीशिव के अर्द्धनिमेषमात्र में संसार के एक करोड़ वर्ष व्यतीत हो गये। असमय ही देवी के इस प्रलयंकर अन्यायकार्य को देखकर श्रीशिवजी ने इसके प्रायश्चित्तस्वरूप श्रीपार्वतीजी को तपस्या करने का आदेश दिया। अतएव वे महादेवजी की आज्ञा से काञ्चीपुरी में कम्पा नदी के तट पर आकर एक आम्रवृक्ष की छाया में जटावल्कलधारिणी एवं भस्मविभूषिता तपस्विनी का वेश धारण कर, कम्पा की वालुका (रेत) से लिङ्ग बना, विधिपूर्वक पूजा और तपस्या करने लगीं। जब श्रीपार्वतीजी को कठिन तपस्या करते कुछ काल बीत गया, तब शङ्करजी ने गौरी की भक्ति और एकनिष्ठा की परीक्षा के लिये नदी में बाढ़ ला दी, जिससे उनके चारों ओर जल-ही-जल हो गया। भगवती ने आँख खोलकर देखा तो उन्हें यह आशङ्का हुई कि नदी के वर्द्धमान प्रबल प्रवाह में कहीं वह वालुका लिङ्ग विलीन न हो जाय, जिससे उनकी तपस्या में विघ्न उपस्थित हो और इसी आशङ्का से वे चिन्तित हो उठीं। समस्त कामनाओं के त्यागपूर्वक भगवान् को अपना मन समर्पण करके उनका भजन करने से कोई भी विघ्न भक्त का अनिष्ट नहीं कर सकता। भगवती शिवलिङ्ग को छाती से चिपटाकर ध्यानमग्न हो गयीं। उन्होंने जल-प्रवाह के भँवर में पड़कर भी उस लिङ्ग का परित्याग नहीं किया। तब भगवान् शङ्कर प्रकट होकर बोले-

विमुच्च बालिके लिङ्गं प्रवाहोऽयं गतो महान्।
त्वयार्चितमिदं लिङ्गं सैकतं स्थिरवैभवम्।।
भविष्यति महाभागे वरदं सुरपूजितम्।
तपश्चर्यां तवालोक्य चरितं धर्मपालनम्।।
लिङ्गमेतन्नामस्कृत्य कृतार्थाः सन्तु मानवाः।।

(तीर्थांक, गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 483)

'हे बालिके! नदी में जो बाढ़ आयी थी, वह अब चली गयी है। तुम लिङ्ग को छोड़ दो। तुमने इस स्थिर – वैभवयुक्त सैकत – लिङ्ग की पूजा की है, अतएव हे महाभागे! यह सुरपूजित पार्थिव लिङ्ग वरदाता बन गया। अर्थात् जो कोई इसकी जिस कामना के साथ उपासना करेगा, उसकी वह कामना पूर्ण होगी। तुम्हारी तपश्चर्या और धर्मपालन का दर्शन और श्रवण एवं इस लिङ्ग की आराधना करके लोग कृतार्थ होंगे।'

अनैषं तैजसं रूपमहं स्थावरलिङ्गताम्। (वही पृ. 483)

'यहाँ मैं अपने ज्योतिर्मय रूप को त्यागकर स्थावर लिङ्ग में परिणत हो गया हूँ। तुम गौतमाश्रम, अरुणाचल (तिरुवण्णमलै) तीर्थ में जाकर तपस्या करो। वहाँ मैं तेजोरूप में तुमसे मिलूँगा।'

शिवकाञ्ची का एकाम्रनाथ – क्षितिलिङ्ग ही महादेवी द्वारा प्रतिष्ठित स्थावर लिङ्ग है। अम्बिका ने काञ्ची से चलते समय तपस्या के लिये आये हुए देवताओं और ऋषियों को वर प्रदान किया–

तिष्ठतात्रैव वै देवा मुनयश्च दृढव्रताः।
नियमांश्चाधितिष्ठन्तः कम्पारोधसि पावने।।
सर्वपापक्षयकरं सर्वसौभाग्यवर्द्धनम्।
पूज्यतां सैकतं लिङ्गं कुचकङ्कणलाञ्छनम्।।
अहं च निष्कलं रूपमास्थायैतद्दिवानिशम्।
आराधयामि मन्त्रेण महेश्वरं वरप्रदम्।।
मत्तपश्चरणाल्लोके मद्धर्मपरिपालनात्।
मन्निदर्शनाच्च तथा सिद्ध्यन्त्वष्टविभूतयः।।
सर्वकामप्रदानेन कामाक्षीमिति कामतः।
मां प्रणम्यात्र मद्भक्ता लभन्तां वाञ्छितं वरम्।। (वही पृ. 483-484)

'हे दृढव्रत देवताओं और मुनियो! नियमाधिष्ठित होकर आपलोग पवित्र कम्पा – तट पर निवास कीजिये और सर्वपापक्षयकर तथा सर्वसौभाग्यवर्द्धक मदीयकुच – कङ्कणलाञ्छित इस सैकतलिङ्ग की पूजा कीजिये। मैं भी निष्कल (अव्यक्त) रूप से अवस्थित होकर अहर्निश इस स्थान पर वरद महेश्वर की आराधना करूँगी। मेरे तपस्या – प्रभाव एवं धर्मपालन के फलस्वरूप इस लिङ्ग का दर्शन और पूजन

करके मनुष्य अभिलषित ऐश्वर्य और विभूति लाभ करेंगे। मैं सर्वकाम प्रदान करती हूँ, मेरे भक्त मुझे कामदायिनी कामाक्षी मानकर कामनापूर्वक मेरी अर्चना करके अभिलषित वर लाभ करेंगे।'

(5) तिरुवण्णमलै (अरुणाचलम्)

दक्षिण के पंचतत्त्वलिंगों में अग्निलिंग अरुणाचलम् में माना जाता है। अरुणाचलम् का ही तमिल नाम तिरुवण्णमलै है। नन्दीश्वर ने पृथ्वी पर कैलास के जो तीन शिखर स्थापित किये थे, उनमें से एक अरुणाचलम् भी है। लोग इसकी परिक्रमा करते हैं। पर्वत के चारों ओर परिक्रमा मार्ग बना है।

स्कंदपुराण में अरुणाचलम् के माहात्म्य के बारे में कहा गया है–

अस्ति दक्षिणदिग्भागे द्राविडेषु तपोधन।
अरुणाख्यं महाक्षेत्रं तरुणेन्दुशिखामणेः।।
योजनत्रयविस्तीर्णमुपास्यं शिवयोगिभिः।
तद् भूमेर्हृदयं विद्धि शिवस्य हृदयंगमम्।।
तत्र देवः स्वयं शम्भुः पर्वताकारतां गतः।
अरुणाचल संज्ञावानस्ति लोकहितावहः।।
सुमेरोरपि कैलासादप्यसौ मन्दरादपि।
माननीयो महर्षिणां यः स्वयं परमेश्वरः।।

(स्कं. पु. माहे. अरुणा. मा. 3/10–12, 14)

अर्थात्–'तपोधन! दक्षिणदिशा में द्राविणदेश के अन्तर्गत भगवान् चन्द्रशेखर का अरुणाचल नामक एक महान् क्षेत्र है। इसका विस्तार 3 योजन (लगभग 38 कि. मी.) है। शिवभक्तों को इसका अवश्य सेवन करना चाहिये। उसे आप पृथ्वी का हृदय समझें। भगवान् शिव उसे अपने हृदय में रखते हैं। लोकहित की दृष्टि से साक्षात् भगवान् शंकर ही यहाँ पर्वतरूप में प्रकट होकर अरुणाचल नाम से प्रसिद्ध हैं। स्वयं परमेश्वरस्वरूप होने के कारण यह क्षेत्र महर्षियों के लिये सुमेरु, कैलास तथा मन्दराचल से भी अधिक माननीय है।'

कार्तिकपूर्णिमा से कई दिन पहले से प्रारंभ करके पूर्णिमातक पर्वत के शिखर पर एक शिला पर तथा एक बड़े पात्र में बराबर ढेर–का–ढेर कपूर जलाया जाता है। उस समय मनों कपूर जला दिया जाता है। कपूर की ऊँची अग्निशिखा पर्वत–शिखर पर उठती रहती है। उस अग्निशिखा को ही भगवान् शंकर का अग्नितत्त्वलिंग मानते हैं। कार्तिक–पूर्णिमा के समय यहाँ बहुत बड़ी भीड़ होती है। लोग अरुणाचलम् की परिक्रमा करते हैं और नीचे से ही शिखर पर उठती अग्निशिखा के दर्शन करके उसे प्रणाम करते हैं। पर्वत पर जहाँ कपूर जलाते हैं, एक शिला पर चरणचिन्ह बने हैं। अरुणाचलम् के ऊपर सुब्रह्मण्य स्वामी तथा देवी की मूर्त्तियाँ हैं।

अरुणाचल पर्वत के नीचे पर्वत से लगा हुआ अरुणाचलेश्वर का विशाल मन्दिर है। इस मन्दिर

का गोपुर काफी चौड़ा है। मन्दिर के चारों ओर दस-दस मंजिल ऊँचे चार गोपुर हैं। भीतर भी कई छोटे गोपुर हैं। गोपुर के भीतर प्रवेश करने पर निजमन्दिरतक पहुँचने के पूर्व तीन आँगन मिलते हैं। पहले आँगन के दक्षिण भाग में एक सरोवर है। यात्री इसी में स्नान करते हैं। सरोवर के घाट पर सुब्रह्मण्य स्वामी का मन्दिर है।

एक छोटे गोपुर को पार करने पर दूसरा आँगन मिलता है। इसके भी दक्षिण भाग में पक्का सरोवर है। इसमें स्नान नहीं किया जाता, इसका जल पीने के काम में आता है। सरोवर के अतिरिक्त इस आँगन में कई मण्डप हैं। उनमें गणेशादि देवताओं की मूर्त्तियाँ हैं।

एक और छोटे गोपुर को पार करने पर तीसरा आँगन आता है, जिसमें अरुणाचलेश्वर का निज-मन्दिर है। निज-मन्दिर में पाँच द्वारों के भीतर शिवलिंग प्रतिष्ठित है। इस मन्दिर की परिक्रमा में पार्वती, गणेश, नवग्रह, दक्षिणामूर्त्ति, शिवभक्तगण, नटराज आदि के दर्शन होते हैं। अरुणाचलेश्वर के निज-मन्दिर के उत्तर श्रीपार्वतीजी का बहुत बड़ा मन्दिर उसी घेरे में है। इस मन्दिर में कई द्वारों के भीतर श्रीपार्वतीजी की भव्य मूर्त्ति प्रतिष्ठित है।

यह स्थान मद्रास (चेन्नई) से 185 कि. मी. है। विल्लुपुरम्-गुडूर लाइन पर विल्लुपुरम् से लगभग 62 कि. मी. दूर तिरुवण्णमलै स्टेशन है। स्टेशन से लगभग एक किलोमीटर दूर अरुणाचलम् है। काँची, तिरुपति, मद्रास आदि जगहों से मोटर-बस द्वारा यहाँ आने की सुविधा है।

शिवकांची से श्रीपार्वतीजी के तिरुवण्णमलै (अरुणाचलम्)- तीर्थ पहुँच कर कुछ काल और तपस्या करने के पश्चात् अरुणाचल-पर्वत पर अग्निशिखा के रूप में एक तेजोलिंग का आविर्भाव हुआ और उससे जगत् का वह अन्धकार दूर हुआ, जिसका वर्णन कांची के क्षितिलिंग के इतिहास में आया है। यहाँ हर और पार्वती का मिलन हो गया।

(6) जम्बुकेश्वर – अप्लिङ्ग

जम्बुकेश्वर आपोलिंग का मन्दिर श्रीरंगम् स्टेशन के समीप ही है। श्रीरंगम् मन्दिर से यह लगभग एक मील पूर्व है। यद्यपि त्रिचिनापल्ली (त्रिची) और श्रीरंगम् दो स्टेशन हैं, किन्तु वे एक महानगर के ही दो स्टेशनों की भाँति हैं। एक ही महानगर को मध्य में बहकर कावेरी दो भागों में बाँट देती है। त्रिचिनापल्ली मद्रास-धनुष्कोटि लाइन का एक मुख्य स्टेशन है। विल्लुपुरम् से यहाँ एक लाइन और आती है। त्रिचिनापल्ली से एक लाइन ईरोड की ओर जाती है, एक लाइन मदुरा-त्रिवेन्द्रम की ओर और एक लाइन श्रीरंगम्तक जाती है। त्रिचिनापल्ली से श्रीरंगम् 12 कि. मी. है। विल्लुपुरम्-त्रिचिनापल्ली लाईन पर श्रीरंगम् स्टेशन त्रिचिनापल्ली से पहले पड़ता है। श्रीरंगम् स्टेशन तो है ही, त्रिचिनापल्ली स्टेशन से भी श्रीरंगमन्दिरतक बसें आती हैं।

कावेरी की दो धाराओं के मध्य में श्रीरंगम् द्वीप 17 मील लम्बा तथा तीन मील चौड़ा है। श्रीरंगमन्दिर से लगभग 5 मील ऊपर दोनों धाराएँ पृथक् हुई हैं और लगभग 12 मील मन्दिर से आगे जाकर परस्पर

मिल जाती हैं।

जम्बुकेश्वरलिंग श्रीरंगमन्दिर से लगभग एक मील पूर्व है। यह मन्दिर श्रीरंगम्मन्दिर से भी प्राचीन है। जम्बूकेश्वरमन्दिर का विस्तार 100 बीघे से अधिक ही होगा। इस मन्दिर में 3 आँगन हैं। पहले घेरे के द्वार से, जिससे मन्दिर के पहले प्रांगण में प्रवेश करना होता है, मार्ग सीधे एक मण्डप में आता है, जिसमें 400 खंभे हैं। आँगन में दाहिनी ओर 'तेप्पाकुलम्' नाम का सरोवर है जिसमें झरने का पानी आता है। सरोवर के मध्य में एक मण्डप है। वर्ष में एक बार श्रीरंगमन्दिर से श्रीरंगजी की उत्सवमूर्त्ति यहाँ लायी जाती है।

आँगन के बाम भाग में एक बड़ा मण्डप है। उसके आगे मन्दिर के दूसरे आँगन में सहस्त्रस्तंभमण्डप है और उसके पास एक छोटा सरोवर है। श्रीजम्बूकेश्वर – मन्दिर पाँचवें घेरे में है। यहाँ जम्बूकेश्वरलिंग एक जलप्रवाह के ऊपर स्थापित है। लिंगमूर्त्ति के नीचे से बराबर जल ऊपर आता रहता है। निजमन्दिर में जल भरा रहता है और अनेक बार उससे बाहरतक भी जल भर जाता है। जल निकलने के लिये मार्ग बना है, जिससे मन्दिर में भरा जल बाहर निकाला जाता है। जल के ऊपर मूर्त्ति के ऊपरी भाग के दर्शन होते हैं।

जम्बूकेश्वर – मन्दिर के पीछे एक चबूतरे पर जामुन का एक प्राचीन वृक्ष है। इसी वृक्ष के कारण मन्दिर तथा शिवलिंग का नाम जम्बूकेश्वर पड़ा। कहते हैं, आदि शंकराचार्य ने जम्बूकेश्वर का पूजन – आराधन किया था। निजमन्दिर के बाहर मण्डप में नटराज, सुब्रह्मण्यम्, दक्षिणामूर्त्ति आदि देवताओं की मूर्त्तियाँ हैं। जम्बूकेश्वर – मन्दिर की तीसरी परिक्रमा में सुब्रह्मण्यम् का एक मन्दिर है। इस मन्दिर में अनेकों मण्डप हैं। इनमें मुख्य हैं – झूलनमण्डप, शतस्तम्भमण्डप, सहस्त्रस्तंभमण्डप, नवरात्रिमण्डप, सोमास्कन्दमण्डप, नटराजमण्डप और त्रिमूर्त्तिमण्डप आदि। इस सब में सोमास्कन्दमण्डप की शिल्प कला भव्य है। कहा जाता है कि यह मण्डप भगवान् श्रीराम का बनवाया हुआ है।

मन्दिर की परिक्रमा में एक राजराजेश्वर मन्दिर है। उसमें पंचमुखी शिवलिंग प्रतिष्ठित है। जम्बूकेश्वर – मन्दिर के प्रांगण के बायीं ओर एक फाटक है। उसके भीतर जाने पर भगवती जगदम्बा का मन्दिर मिलता है। यहाँ अम्बा को अखिलाण्डेश्वरी कहते हैं। यह मन्दिर विशाल है। इसका आँगन विस्तृत है जिसमें कई मण्डप हैं। श्रीजगदम्बा के मन्दिर के ठीक सामने गणेशजी का मन्दिर है। इसमें गणेशजी की मूर्त्ति शंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित है। जगदम्बामन्दिर में भगवती की भव्य मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। श्रीजगदम्बामन्दिर के सामने द्वार के समीप एक स्तंभ में वृषभारूढ़ एक पाद त्रिमूर्त्ति महेश्वर की अत्यन्त भव्य मूर्त्ति अंकित है।

जम्बूकेश्वरलिंग की कथा इस प्रकार है। यहाँ पहले आसपास जामुन के ही वृक्ष थे। यहाँ एक ऋषि भगवान् शिव की आराधना करते थे। जम्बूवन में निवास करने के कारण उनका नाम जम्बू ऋषि पड़ गया। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने उन्हें दर्शन दिया और उनकी प्रार्थना पर

यहाँ लिंग – विग्रह के रूप में नित्य स्थित हुए।

आस – पास के जामुन के वृक्षों के पत्ते शिवलिंग पर गिरा करते थे। उनसे उसे बचाने के लिये एक मकड़ी मूर्त्ति के ऊपर प्रतिदिन जाला बना देती थी। एक हाथी सूँड़ में जल लाकर मूर्त्ति का अभिषेक करता था। भगवान् की मूर्त्ति पर मकड़ी का जाला देखकर हाथी को बुरा लगता था। उधर मकड़ी को भी बुरा लगता था कि हाथी पानी डालकर बार – बार उसका जाला तोड़ देता है। इस प्रकार दोनों में प्रतिस्पर्धा हो गयी। हाथी ने एक दिन मकड़ी को मार डालने के लिये सूँड़ बढ़ायी तो मकड़ी हाथी की सूँड़ में चली गयी। फल यह हुआ कि हाथी और मकड़ी दोनों मर गये। दोनों के भाव शुद्ध थे। अत: भगवान् शिव ने दोनों को अपने निज – जन के रूप में स्वीकार कर लिया।

श्रीजम्बूकेश्वरलिंग के सामने मण्डप में एक स्तम्भ में इस कथा के चित्र अंकित हैं। जम्बूकेश्वर – मन्दिर तथा जगदम्बा – मन्दिर में कई शिलालेख तमिल में हैं। उनमें से एक में यह कथा उत्कीर्ण है।

स्थापत्य – शिल्प की दृष्टि से जम्बूकेश्वर – मन्दिर बहुत उत्तम बना है। मन्दिर के बाहर पाँच परकोटे हैं, तीसरे परकोटे में एक जलाशय है जहाँ स्नान किया जाता है। यहाँ के जामुन के पेड़ का भी बड़ा माहात्म्य है।

(7) चिदम्बरम्

मद्रास – धनुष्कोटि लाइन पर विल्लुपुरम् से लगभग 76 कि. मी. दूर चिदम्बरम् स्टेशन है। शंकरजी के पंचतत्त्वलिंगों में से आकाशतत्त्वलिंग चिदम्बरम् में ही माना जाता है। मन्दिर स्टेशन से लगभग 1½ कि. मी. दूर है। यहाँ नटराज शिव का मन्दिर ही प्रधान है। इस मन्दिर का घेरा लगभग 100 बीघे का होगा। इस घेरे के भीतर ही सब दर्शनीय मन्दिर हैं। पहले घेरे के बाद ऊँचे गोपुर दूसरे घेरे में मिलते हैं। पहले घेरे में छोटे गोपुर हैं। दूसरे घेरे के गोपुर 9 मंजिल के हैं जिनपर नाट्यशास्त्र के अनुसार विभिन्न नृत्यमुद्राओं की मूर्त्तियाँ बनी हैं।

यह मन्दिर समुद्रतट से दो – तीन मील के अन्तर पर कावेरी नदी के तट पर बड़े सुरम्य स्थान में बना हुआ है। मन्दिर के चारों ओर एक के बाद दूसरा, इस क्रम से चार बड़े – बड़े घेरे हैं। दूसरे घेरे के गोपुरों से प्रवेश करने पर एक और घेरा मिलता है। दक्षिण के गोपुर से भीतर प्रवेश करें तो तीसरे घेरे के द्वार के पास गणेशजी का मन्दिर मिलता है। गोपुर के सामने उत्तर एक छोटे मन्दिर में नन्दी की विशाल मूर्त्ति है। इसके आगे नटराज के निज – मन्दिर का घेरा है। निजमन्दिर भी दो घेरे के भीतर है। घेरे की भित्तियों पर नन्दी की मूर्त्तियाँ थोड़ी – थोड़ी दूरी पर हैं। इस चौथे घेरे में अनेक छोटे मन्दिर हैं। नटराज का निजमन्दिर चौथे घेरे को पार करके पाँचवें घेरे में है।

समाने नटराज का सभामण्डप है। आगे एक स्वर्णमण्डित स्तम्भ है। नटराज – सभागार के स्तम्भों में सुन्दर मूर्त्तियाँ बनी हैं। आगे एक आँगन के मध्य में कसौटी के काले पत्थर का श्रीनटराज का निजमन्दिर है। इसके शिखर पर स्वर्णपत्र चढ़ा है। मन्दिर का द्वार दक्षिण दिशा में है। मन्दिर में नृत्य करते हुए भगवान्

शिव की बड़ी सुन्दर मूर्त्ति है। यह मूर्त्ति स्वर्ण की है। पास में ही पार्वती, तुम्बरु, नारदजी आदि की कई छोटी सुवर्णमूर्त्तियाँ हैं।

नटराज के दाहिनी ओर काली भित्ति में एक यन्त्र खुदा है। वहाँ सोने की मालाएँ लटकती रहती हैं। यह नीला शून्याकार ही आकाशतत्त्वलिंग माना जाता है। इस स्थान पर प्रायः पर्दा पड़ा रहता है। लगभग 11 बजे दिन को अभिषेक के समय तथा रात्रि में अभिषेक के समय इसके दर्शन होते हैं। यहाँ सम्पुट में रखे दो शिवलिंग हैं। एक स्फटिक का दूसरा नील मणि का। इनके अतिरिक्त एक बड़ा सा सोने से मढ़ा हुआ एक दुर्लभ दक्षिणावर्त शंख रखा हुआ है। इनके दर्शन अभिषेक-पूजन के समय दिन में 11 बजे के लगभग होते हैं। स्फटिकमणि की मूर्त्ति को चन्द्रमौलिश्वर तथा नीलम की मूर्त्ति को रत्नसभापति कहते हैं।

श्रीनटराज-मन्दिर के समाने के मण्डप में जहाँ नीचे से खड़े होकर नटराज के दर्शन करते हैं, वहाँ बायीं ओर श्रीगोविन्दराज का मन्दिर है। मन्दिर में नारायण की सुन्दर शेषशायी मूर्त्ति है। यहाँ लक्ष्मीजी तथा अन्य कई दूसरे छोटे उत्सव-विग्रह भी हैं। श्रीगोविन्दराज-मन्दिर के बगल में(नटराज- सभा के पास पश्चिम भाग में) भगवती लक्ष्मी का मन्दिर है।

नटराज-मन्दिर के चौथे घेरे में ही एक मूर्त्ति भगवान् शंकर की है। शंकरजी के गोद में बायीं तरफ पार्वतीजी विराजमान हैं। एक हनुमान्जी की चांदी की मूर्त्ति है। नटराज-मन्दिर के नीजी घेरे के बाहर(चौथे घेरे में) उत्तर एक मन्दिर है। इस मन्दिर में सामने सभामण्डप है। कई ड्योढ़ी भीतर भगवान् शिव का लिंगमय विग्रह है। यही चिदम्बरम् का मूल विग्रह है। महर्षि व्याघ्रपाद तथा पतञ्जलि ने इसी मूर्त्ति की अर्चा की थी। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर प्रकट हुए थे। उन्होंने ताण्डव-नृत्य किया। उस नृत्य के स्मारकरूप में नटराजमूर्त्ति की स्थापना हुई। आदि मूर्त्ति तो यह लिंगमूर्त्ति ही है। यहाँ इस मन्दिर में एक ओर पार्वती की मूर्त्ति है।

नटराज मन्दिर के दो घेरों के बाहर पूर्वद्वार से निकलें तो उत्तर की ओर एक बहुत बड़ा शिवगंगा-सरोवर मिलता है। इसे हेमपुष्करिणी भी कहते हैं। इस सरोवर के पश्चिम पार्वती-मन्दिर है। पार्वतीजी को यहाँ शिवकाम-सुन्दरी कहते हैं। यह मन्दिर विशाल है। तीन ड्योढ़ी भीतर जाने पर पार्वती के दर्शन होते हैं। शिवगंगा सरोवर के पूर्व एक पुराना सभामण्डप है। इसे 'सहस्रस्तम्भमण्डपम्' कहते हैं। यह अब जीर्ण अवस्था में है। चिदम्बर-मन्दिर के घेरे में एक ओर एक धोबी, एक चाण्डाल तथा दो शूद्रों की मूर्त्तियाँ हैं। ये शिवभक्त हो गये हैं, जिन्हें भगवान् शिव ने दर्शन दिया था।

गर्भमन्दिर के सामने ड्योढ़ी पर पीतल की एक विशाल चौखट बनी हुई है। यहाँ पर रात्रि में सैकड़ों दीपक जलाये जाते हैं। यहाँ जून तथा दिसम्बर के महीनों में दो बड़े-बड़े उत्सव होते हैं जिन्हें क्रमशः 'आर्द्रादर्शनम्' तथा 'तिरुमञ्जनम्' कहते हैं। इन अवसरों पर बड़ी धूम-धाम से भगवान् की सवारी निकलती है। दक्षिण में 63 शिवभक्त या 'आडियार'आविर्भूत हुए हैं, जिन्होंने 'द्राविड़देव' के

नाम से तमिल-प्रबन्ध लिखे हैं तथा जिनका उल्लेख 'पेरियपुराणम्' में हुआ है। चिदम्बरम् एवं अन्य तत्त्वों से संबंधित तीर्थ उन सभी भक्तों के लीला-क्षेत्र रहे हैं।

(8) श्रीकालहस्तीश्वर

भगवान् शंकर के जो पंचतत्त्वलिंग माने जाते हैं, उनमें से कालहस्ती में वायुतत्त्वलिंग है। यहाँ 51 शक्तिपीठों में से एक पीठ भी है। यहाँ सती का दक्षिण स्कन्ध गिरा था। मद्रास, चेंगलपट एवं तिरुपति से कालहस्ती के लिये मोटर-बस चलती है। विल्लुपुरम्-गुडूर लाइन पर रेनीगुंटा से 15 मील (तिरुपति ईस्ट से 21 मील) पर कालहस्ती स्टेशन है। स्टेशन से कालहस्ती लगभग 1½ मील दूर है।

स्टेशन से लगभग एक मील पर स्वर्णमुखरी[1] नदी है। नदी में जल कम रहता है। नदी के पार तट पर ही श्रीकालहस्तीश्वर मन्दिर है। नदी को पक्के पुल से पार करके मन्दिरतक आने में 1½ मील की दूरी तय करनी पड़ती है। किंतु सीधे नदी पार करके आने पर दूरी मील भर से अधिक नहीं है। नदीतट के पास ही एक पहाड़ी है। उसे कैलासगिरि कहते हैं। नन्दीश्वर ने कैलास के जो तीन शिखर पृथ्वी पर स्थापित किये, उन्हीं में से यह एक है। पहाड़ी के नीचे उससे सटा हुआ श्रीकालहस्तीश्वर का विशाल मन्दिर है। मन्दिर का घेरा विस्तृत है। उसमें दो परिक्रमाएँ तो बाहर ही हैं। यहाँ दर्शन-पूजन के लिये शुल्क निर्धारित है।

मन्दिर में मुख्य स्थान पर भगवान् शंकर की लिंगमूर्त्ति है। यह वायुतत्त्वलिंग है, अत: पुजारी भी इसका स्पर्श नहीं करते। मूर्त्ति के पास स्वर्णपट्ट स्थापित है, उसी पर माला आदि चढ़ाया जाता है तथा पूजा होती है। मन्दिर के गर्भगृह में वायु और प्रकाश का अभाव है। दर्शन भी दीपक के सहारे होते हैं। यहाँ शिवमूर्त्ति गोल नहीं, चौकोर है। इस मूर्त्ति में मकड़ी, सर्पफण तथा हाथी के दाँत के चिन्ह स्पष्ट दीखते हैं। कहा जाता है कि सर्वप्रथम मकड़ी, सर्प तथा हाथी ने यहाँ शंकरजी की आराधना की थी। उनके नाम पर ही श्रीकालहस्तीश्वर[2] नाम पड़ा। मन्दिर में ही गाण्डीवधारी अर्जुन तथा भगवान्

---

1. सुवर्णमुखरी नदी को धरती पर लाने का श्रेय महर्षि अगस्त्य को है। (देखें स्कं. पु. वैष्णवखण्ड-भूमिवाराहखं. अध्याय 33)

2. सतयुग में विश्वकर्मा का बेटा ऊर्णानाभ ब्रह्माजी के श्राप के कारण गजारण्य में श्रीनामक मकड़ा पैदा हुआ। स्वर्णमुखरी नदी के जल के संपर्क में आने पर उसे पूर्वजन्म की स्मृति हो गयी और उसने भगवान् शिव के उक्त लिंग की पूजा कर मोक्ष प्राप्त किया और भगवान् शिव से यह वरदान पाया कि उस स्थान का नाम उसके नाम पर प्रसिद्ध होगा। संस्कृत में 'ऊर्ण' का अर्थ मकड़ी होता है। अत: श्री = मकड़ी।

इसी प्रकार काल नामक नाग, जो शंकरजी के कंठाभरण में प्रयुक्त होता था, तथा हस्ति नामक प्रमथगण क्रमश: भगवान् शंकर एवं पार्वती से श्राप पाकर गजारण्य में क्रमश: सर्प एवं हाथी के रूप में पैदा होकर उन्होंने भगवान् शिव के उक्त लिंग की उपासना करके मुक्ति पायी। साथ में उन लोगों ने यह वरदान भी पाया कि यह स्थान उनके नामों के आधार पर प्रसिद्ध होगा। अत: काल = सर्प, हस्त = हाथी। इस प्रकार तीनों प्राणियों के नाम पर इस स्थान को श्रीकालहस्तीश्वर कहा जाने लगा।

शिव की मूर्त्तियाँ भी है। अर्जुन[1] की मूर्त्ति को पण्डे कण्णप्पर की मूर्त्ति कहते हैं।

मन्दिर में ही भगवती पार्वती का पृथक् मन्दिर है। परिक्रमा में गणेशजी, चार शिवलिंग, कार्तिकेय, सहस्त्रलिंग, चण्डिकेश्वर, नटराज, सूर्य, काशीविश्वनाथलिंग, रामेश्वर, शिवभक्तवृन्द, अविमुक्तलिंग, कालभैरव तथा दक्षिणामूर्त्ति आदि अनेक देवमूर्त्तियाँ हैं।

कालहस्तीश्वरमन्दिर के अग्निकोण में चट्टान काटकर बनाया हुआ एक मण्डप है, जिसे मणिगण्णियगट्टम् कहते हैं। इस नाम की एक भक्ता हो गयी हैं, जिनके दाहिने कान में मृत्यु के समय भगवान् शंकर ने तारक – मन्त्र फूँका था – ठीक उसी प्रकार, जैसे भगवान् विश्वनाथ काशी में मरनेवालों को तारक मंत्र देते हैं। उन्हीं भक्त महिला के नाम से यह मण्डप विख्यात है। आज भी श्रद्धालुलोग मरणासन्न संबंधियों को यहाँ लाकर दाहिनी करवट इस तरह लिटा देते हैं, जिससे उनका दाहिना कान पृथ्वी पर टिक जाय। इसी विशेषता के कारण दाक्षिणात्यलोग इस तीर्थ को दक्षिणकाशी कहते हैं।

मन्दिर के पास ही पहाड़ी है। कहा जाता है कि इसी पहाड़ी पर अर्जुन ने तपस्या करके भगवान् शंकर से पाशुपतास्त्र प्राप्त किया था।[2] यहाँ पहाड़ी के ऊपर जो शिवलिंग है उसे अर्जुन द्वारा प्रतिष्ठित बताया जाता है। पीछे कण्णप्पर ने उसका पूजन किया। इसलिये उसका नाम कण्णपेश्वर हो गया। पहाड़ी पर जाने के लिये सीढ़ियाँ नहीं है, किन्तु थोड़ी ही दूर ऊपर जाना पड़ता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं होती। ऊपर एक छोटा सा घेरा है। घेरे के भीतर मन्दिर में कण्णपेश्वर शिवलिंग है। घेरे से बाहर एक छोटे मन्दिर में कण्णप्पर भील की मूर्त्ति है।

इस पहाड़ी से उतरते समय एक मार्ग बायें हाथ की ओर कुछ आगे जाता है। यहाँ एक सरोवर है। पहाड़ी पर से वह सरोवर दीखता है। कहा जाता है कि कण्णप्पर शिवलिंग पर चढ़ाने के लिये वहीं से जल मुख में भरकर ले आता था। यह सरोवर पवित्र तीर्थ माना जाता है।

कण्णप्प – पहाड़ी के ठीक सामने बस्ती के दूसरे सिरे पर एक और पहाड़ी है। इस पहाड़ी पर दुर्गा – मन्दिर है। यह स्थान 51 शक्तिपीठों में से एक है, किन्तु अब उपेक्षित हो गया है। सुवर्णमुखरी नदी पर मोटर – बसों के लिये जो पक्का पुल बना है, उसके समीप ही एक गली में होकर कुछ मीटर आगे जाने पर पहाड़ी पर जाने का मार्ग मिल जाता है। मार्ग साधारण ही है। पहाड़ी के ऊपर एक घेरे

---

1. अर्जुन ही कलियुग में कण्णप्पर भील के रूप में महान् शिवभक्त हुआ। कण्णप्पर ने कालहस्तीश्वर की उपासना में अपने नेत्र चढ़ा दिये थे। फलस्वरूप भगवान् शिव ने प्रकट हो उसे मोक्ष प्रदान किया।

2. कई ग्रन्थों में कहा गया है कि अर्जुन ने इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करके पाशुपतास्त्र प्राप्त किया था। हो सकता है कि कल्पभेद से कथा में अन्तर आ गया हो। हालाँकि स्कंदपुराण के वैष्णवखण्ड के भूमिवाराहखण्ड के अध्याय 33 में अर्जुन को कालहस्तीश्वर के पास जाने का उल्लेख है।

के भीतर छोटा सा मन्दिर है। मन्दिर में देवीमूर्त्ति को दुर्गाम्बा या ज्ञानप्रसू कहते हैं।

कालहस्तीश्वर के प्राचीन इतिहास में कण्णप्पर भील की कथा कही जाती है। कण्णप्पर की कथा इसी पुस्तक में अन्यत्र दी गयी है। कण्णप्पर भगवान् शिव के ऊपर चढ़े द्रव्यों को अपने जूते पहने पैरों से हटाता, अभिषेक के लिये मुँह के पानी का कुल्ला करता तथा नैवेद्य में मांसादि को चखकर चढ़ाता था।

यह सब होते हुए भी कण्णप्पर भगवान् शिव का महान् भक्त कहलाता है तथा उसे भगवान् शिव दर्शन देकर अपने लोक में ले गये। आदि शंकराचार्य ने भक्त कण्णप्पर की प्रशंसा में निम्न श्लोक लिखा है–

मार्गावर्तितपादुका पशुपतेरङ्गस्य कूर्चायते
गण्डूषाम्बुनिषेचनं पुररिपोर्दिव्याभिषेकायते।
किंचिद् भक्षितमांसशेषकवलं नव्योपहारायते
भक्ति किं न करोत्यहो वनचरो भक्तावतंसायते।। (शिवानन्दलहरी 63)

अर्थात् – 'रास्ते में ठुकरायी हुई पादुका ही भगवान् शंकर के अंग झाड़ने की कूची बन गयी, आचमन (कुल्ला) का जल ही उनका दिव्याभिषेक जल हो गया और उच्छिष्ट (जूठा) मांस का ग्रास ही नवीन उपहार –नैवैद्य बन गया। अहो भक्ति क्या नहीं कर सकती? इसके प्रभाव से एक जंगली भील भी भक्तश्रेष्ठ बन गया।'

स्वर्णमुखरी नदी का संबंध शालग्राम की मूर्त्ति से बतलाया जाता है। अत: वे यात्री, जिनके पास शालग्राम की मूर्त्ति होती है, वे यहाँ एक रात्रि के लिये अवश्य निवास करते हैं। महाशिवरात्रि के अवसर पर यहाँ सात दिनतक चलनेवाला एक बड़ा भारी मेला लगता है।

(यह लेख मुख्यत: गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण के 'तीर्थांक' एवं 'शिवांक' एन. बी. गोपाल एण्ड कम्पनी, मद्रास द्वारा 1992 में प्रकाशित 'श्रीकाल हस्तीश्वर की महिमा' तथा हरिकुमारी आर्टस्, कन्याकुमारी द्वारा प्रकाशित साउथ इण्डिया–ए ट्रेवेल गाईड पर आधारित है।)